Name -> Tanu

Cource -> Sanskrit Hons. (B.A)

Paper -> Acting and Script Writing

Semester -> IV

Roll No. -> SKT/18/02

Session -> 2019-20

Paper Code -> 12133901

अभिनय के प्रयोक्ता

अभिनय के सम्बन्ध में प्रयोक्तागण से अभिप्राय है - नाट्यमण्डली। इसमें अभिनय करने वाले अभिनेताओं और अभिनय में सहायता करने वाले व्यक्तियों का समूह परिगणित है। नाट्य के लेखन से लेकर उसके मंच पर उतारने की प्रक्रिया में जिन-जिन व्यक्तियों का सहयोग अपेक्षित है वे सब नाट्य के प्रयोक्ता है। सूत्रधार, नट, नटी, पारिपार्श्विक, कुशीलव, विदूषक सहित नाट्य वर्ग के उपयोगी पात्र इस वर्ग में सम्मिलित किये जाते है। शारदातनय के अनुसार नाट्य का प्रयोक्ता शैलूष, भरत, भाव, नट आदि नामों से पुकारा जाता है। अभिनय का सम्बन्ध अभिनेता से है। नाट्यशास्त्र में अभिनेता शब्द उपलब्ध नहीं है। यह अपेक्षाकृत आधुनिक शब्द है। भरत ने इसके लिये दो शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है - भरत और नट। नटो का सम्बन्ध मूलतः मूकाभिनय से है, जिसमें आंगिक अभिनय का प्राचुर्य होता है और भरतो का सम्बन्ध वाणी से है अर्थात् वाणी के उतार-चढ़ाव द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले वाचिक अभिनय से है। कालान्तर में ये दोनो शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त होने लगे।

सामान्याभिनय, चित्राभिनय और वैश्विक प्रकरणों में अभिनय और भूमिका विभाजन के सामान्य नियम बताये गये है। दर्शकगण। भरत और नाट्यप्रयोक्ताओं के रूप में राजा, महारानी, रानी, सेनापति, मन्त्री, पुरोहित, विदूषक, देव, दानव आदि अनेक प्रकृतियों को नाट्य के सहयोगी, प्रतियोगी आदि पात्रों के रूप में रंगमंच पर प्रत्यक्ष देखता है। भरतमुनि ने इनके प्रयोज्य कर्तव्यों का निर्देश करके अपनी प्रयोगात्मक दृष्टि की सूक्ष्मता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। नाट्यप्रयोक्ताओं को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1) अभिनय क्रिया के आधार पर -> सूत्रधार, स्थापक, पारिपार्श्विक, भरत, कुशीलव, शैलूष, नायकादि पात्र की भूमिका निभाने वाले नट, नटी, नर्तक, नर्तकी आदि।

(2) संगीतज्ञ -> गन्धर्व, किन्नर, तौरिप, नन्दी, बन्दी, वैतालिक, चारण, मागध, तालधारक, वाद्यकार आदि।

(3) नाट्योपयोगी उपादान सम्भारक -> इसके दो वर्ग किये जा सकते है -

- दूसरे उपवर्ग में कारक, माल्यकार, आभरणकार, मुकुटकार, शिल्पी पहले उपवर्ग में प्रशिक्षण, नाट्याचार्य, उपाध्याय आदि आदि सहकारी व्यक्ति।

इसी प्रसंग में भरत ने नाट्यकार (नाट्यलेखक/कवि) की भी चर्चा की है। नाट्य प्रयोग के लिये सभा-सन्निवेश, सभापति, मन्त्री, सभासदों के लक्षणों का भी विवरण दिया है। इनमें कतिपय प्रमुख प्रयोक्ताओं का स्वरूप स्पष्ट किया जा रहा है।

- भरत → 'भृञ्' धातु से 'अत्' प्रत्यय करके अथवा 'भर' उपपद पूर्वक 'तनु' धातु से 'ड' प्रत्यय के योग से भरत शब्द व्युत्पन्न है। प्रथम व्युत्पत्ति का अर्थ है - "बिभर्ति स्वांगम्"। अर्थात् जो स्वांग भरता है। लोक में इसे बहुरूपिया भी कहते हैं। दूसरी व्युत्पत्ति का अर्थ है - "बिभर्ति लोकान्।" अर्थात् जो लोक का भरण-पोषण करता है। नाट्य के परिप्रेक्ष्य में प्रथम व्युत्पत्ति भरतों के स्वरूप और कार्यों की परिचायक है।

नाट्यप्रयोक्ताओं को यह नाम भरतमुनि द्वारा प्रशस्त मार्ग का अनुसरण करने के कारण प्राप्त हुआ। नाट्यशास्त्रीय परम्परा में भरत शब्द एकवचन और बहुवचन दोनों ही रूपों में मिलते हैं। ब्रह्मा से नाट्यवेद ग्रहण कर उसकी शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने वाले भरत मुनि के लिये एकवचनान्त भरत पद का प्रयोग किया जाता है। नाट्यप्रयोग के भरण या धारण करने वाले प्रयोक्ताओं के लिए बहुवचनान्त भरत शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिस-जिस कला, हस्त-कौशल का आश्रय लेकर लोग आजीविका चलाते हैं, उन-उन कलाओं के नाम से उनकी जातियाँ कही जाती हैं। इसलिये नाट्यशास्त्र का कर्ता भी भरत नाम से प्रसिद्ध है और नाट्य से अपनी आजीविका चलाने वाला नट परिवार भी भरत कहलाता है। इसी ग्रन्थ में एक अन्य प्रसँग में भाषा, वर्णों और विविध उपकरणों की सहायता से अनेक प्रकृतियों के वेश, वय, कर्म, चेष्टा को धारण करने के कारण नाट्यप्रयोक्ताओं की भरत संज्ञा का विधान किया गया है।

भरत शब्द में तीन अक्षर हैं - भकार, रकार और तकार। भकार से भाव, रकार से राग और तकार से ताल का ग्रहण होता है। जातिवाचक संज्ञा के रूप में भरत उस समुदाय को कहते हैं जो गायन, वादन, नर्तन और अभिनय में पारंगत था।

प्राय: नाट्यशास्त्र भरत नामक किसी एक व्यक्ति की रचना माना जाता है। वस्तुत: अलग-अलग समय में अनेक भरतों ने नाट्यशास्त्र के वर्तमान कलेवर को गढने में अपना योगदान किया है। सम्भवत: इसीलिए उन्हें संघर्ष और शाप तथा अपमान का भागीदार बनना पड़ा था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भरत संज्ञक नटों का मुख्य कार्य अभिनय करना है। इन्हीं के नाम से भारतीवृत्ति का प्रचलन हुआ है। ये हर प्रकार के वाद्य बजाने और हर प्रकार की भूमिका निभाने में सक्षम होते हैं और नाट्यसम्बन्धी समस्त विधि-विधानों से पूर्णत: परिचित होते हैं।

नट-नटी → भरतों के लिए सर्वाधिक प्रचलित संज्ञा नट है। इसका सामान्य अर्थ है - नाचने वाला या अभिनय करने वाला। 'नट' शब्द भ्वादिगणीय 'नट - अवस्पंदे' धातु से अच् प्रत्यय के प्रयोग से निर्मित है। 1 वेबर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'नृती गात्रविक्षेपे' धातु (नृत) का प्राकृत रूप माना जाता है। 2 भरत के नाट्यशास्त्र में नट और नर्तक शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनके अनुसार जो लोक में घटित वृतान्त और जीवन की घटनाओं से, रस, भाव और सात्विक भाव से संयुक्त करके मंचन करता है वह नट कहलाता है। 3 अमरकोष की रामाश्रमी टीका में भी नट् धातु नृत धातु अर्थ में मानी गई है। 4 इसका कारण सम्भवतः यही प्रतीत होता है कि अमरसिंह ने तौर्यत्रिक अर्थात् नृत्य, गीत और वाद्य के समान्वित रूप को नाट्य के पर्याय में परिगणित किया है। 5

प्राचीन भारतीय वर्ण व्यवस्था में ऐसे निर्देश भी मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति जिस प्रकार की कला या शिल्प को अपनी आजीविका के लिए अपनाता था उसी कला शिल्प व्यवसाय आदि के आधार पर उसकी वही जाति प्रसिद्ध जाती थी।

नाट्य के प्रदर्शन के व्यवसाय से जुड़े या नाट्य को अपनी अजीविका का साधन बनाने वाले लोगों के समूह की नट संज्ञा उसी आधार पर प्रचलित हुई थी। नाट्यशास्त्र में स्पष्टतः नट समूह को एक नाट्योपजीवी वर्ग या जाति के रूप में ग्रहण किया गया है। इन्हीं में से विविध नटों की नाटकीय भूमिका के अनुसार नायक, प्रतिनायक, सहनायक आदि की भूमिका प्रदान की जाती थी।

आत्रेय प्रमुख ऋषियों ने भरत से नाट्योत्पत्ति विषयक प्रश्न किये थे। उन्होंने भरत से यह भी प्रश्न किया था कि आपके वंश की नटसंज्ञा में परिणति कैसे हुई? इससे ज्ञात होता है कि नट भरत के ही वंशज हैं।

नट का वैशिष्ट्य रेखांकित करते हुए भरत व्यक्त करते हैं कि अच्छा शरीर, सुन्दर रूप अभिनय क्रियाओं का व्यवहारिक ज्ञान, धारणा शक्ति, नाटकीय संविधान से परिचय, नाटकीय कर्म का कुशलतापूर्वक सम्पादन करने वाला व्यक्ति नट होने योग्य है। इसे संगीत विधान का भी ज्ञान होना चाहिए।

अभिनय कर्म में निरत होने से नट को अभिनेता कहते हैं। अभिनेताओं का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व के आधार पर वो अपने मौलिक व्यक्तित्व पर पूरा नियन्त्रण रखते हुये किसी नाटकीय पात्र को जीवन्त करते हैं। अभिनेता किसी अभिनेय पात्र की मनः स्थिति और चरित्र को आत्मसात् करता है। दर्शकों को यह भान न हो कि सब कुछ अभिनय किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किया जा रहा है।

सूत्रधार अभिनेताओं को उनके व्यक्तित्व के समनन्तर चरित्रों में ही रंगमंच पर उतारना पसन्द करते हैं। कुम्भकर्ण की भूमिका में कोई सुकुमार आकृति का अभिनेता अनुकूल नहीं कहा जा सकता। व्यक्तित्व के अनुरूप भूमिका के निर्वाह से अभिनय

स्वाभाविक लगता है।
नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरत के सौ पुत्रों के नामों को देखने को मिलता है कि वे भरत की नाट्यमण्डली के अभिनय में सहयोग करने वाले नट हैं। इनका व्यक्तित्व एक दूसरे से भिन्न है और अपनी-अपनी योग्यता और व्यक्तित्व के अनुरूप ही अभिनय में नियुक्त किये जाते होंगे। कतिपय नाम द्रष्टव्य हैं - शाण्डिल्य, वात्स्य, कोहल, दत्तिल, तण्डुशिख, अश्वकुट्ट, नखकुट्ट, पुलोमा, बादरि, गौतम, बादरायण आदि परवर्ती नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्यआचार्य के रूप में उल्लिखित है।
विपुल, धूम्रायण, पुण्ड्रनास, हिरण्याक्ष, चाबस्वर, भयानक, बीभत्स, शठ, रौद्र, वीर, विद्युज्जिह्व, उग्र, तुम्बर, गृहजुक, शबल आदि नाम व्यक्तित्व की भिन्नता को प्रदर्शित करते हैं। भरत स्वयं कहते हैं कि पितामह ब्रह्मा की आज्ञा से अपने सौ पुत्रों को भूमिका के विभाग के अनुसार जो जिस के योग्य था, उसे उसी भूमिका में लगा दिया गया।
अभिनय का यथार्थ इसी में है कि नट अपनी कुशलता और परिपक्व अनुभव से घटनाओं के नाटकीय विकास के अनुकूल दुस्साध्य को भी सुसाध्य बनाने की क्षमता रखता है। नाट्य में दर्शकों से सीधा संवाद स्थापित करने वाला अभिनेता ही है। सूत्रधार का निर्देशन भी तभी सफल है जब उसे कुशल अभिनेताओं का सहयोग मिले।
नाट्यकार जिस नाट्य का प्रणयन करता है और सूत्रधार कल्पना द्वारा अपनी चेतना में पुनः सृजित करता है, उसी को रंगमंच पर रसात्मक प्रदर्शन करने का दायित्व नटों का है।
यह कार्य परकाया प्रवेश के समान दुष्कर है। नट को पात्र की भूमिका में उतरना पड़ता है। अभिनय के समय उसकी चेतना वही रूप धारण करती है जो नाट्यकार ने अपने पात्र में संचारित की है। जो जितनी कुशलता से इस कार्य को सम्पन्न करता है, उसका प्रदर्शन उतना ही कलात्मक और सफल रहता है। अपनी मौलिक प्रतिभा से उसमें नवीनता लाता है। तटस्थ भाव से कल्पित जीव का अभिभावन करता है। परिणामतः उसका अभिनय अनुकरणात्मक मात्र न होकर सौन्दर्यनिष्ठ हो जाता है।
● नटी → भरत के अनुसार जो शरीर रूप, गुण सौन्दर्य, सौभाग्य, धैर्य व शील से सम्पन्न; कोमल, मधुर, स्निग्ध और आकर्षक कण्ठस्वर से युक्त, हेला (स्त्रियों की स्वाभाविक हास्यपूर्ण चेष्टा) और भावों का अभिनय करने में समर्थ, मृदु व्यवहार वाली, वाद्यों के वादन में कुशल, स्वर, ताल, लय और यति का समुचित बोध रखने वाली नाट्याचार्य की सुश्रूषा करने वाली, चतुर नाट्यप्रयोग में कुशल, ऊहापोह में समर्थ, रूप और यौवनशालिनी स्त्री नाटकीया कहलाती है। वस्तुतः भरत का अभिप्राय यहाँ प्रधानभूमिका का निर्वाह करने वाली

अभिनेत्री है इसे नाटक में प्रधान भूमिका दी जाती है उदाहरण के लिये मालविकाग्निमित्रम् में मालविका की भूमिका का निर्वाह करने वाली नटी।
यह नट की सहयोगिनी और आवश्यकता के अनुसार अभिनय में नियुक्त की जाने वाली स्त्री प्रयोक्त्री है। शारदातनय के मत में नाट्यकर्म में नट की अनुयोक्त्री, गृहिणी नटी कहलाती है। अनेक नाटकों में सूत्रधार नटी के सहयोग से नाट्यारम्भ की प्रक्रिया संचालित करता है। यह संगीतकलाविज्ञा, अभिनय कार्य में चारुता और वस्त्र-आभूषण आदि नेपथ्य कर्म का भी संचालन करती है। रत्नावली में सूत्रधार स्पष्टतः प्रस्तावना में संगीत कार्य के अनुष्ठान में सहायक नटी को अपनी गृहिणी कहता है। स्त्रीणां तु प्राकृतं पाठ्यं। इस नियम के अनुसार प्रस्तावना कार्य में इसकी संवाद-योजना प्राकृत में रखी जाती है।

- **सूत्रधार** → संस्कृत नाट्यशास्त्र की परम्परा में सूत्रधार का स्थान सभी प्रयोक्ताओं में प्रमुख है। यह प्रयोग का प्राण बन कर पात्रों को जीवन और गति देता है। नाट्य के शास्त्रीय पक्ष को जानने के कारण इसे 'सूत्रज्ञ' भी कहते हैं। सूत्रज्ञ का अभिप्राय है - नट सूत्रों को जानने वाला। नट-सूत्र नाट्य प्रयोग के नियम हैं। भरत के पूर्व पाणिनी ने भी कृशाश्व और शीलालिन् के द्वारा रचित नट-सूत्रों का उल्लेख किया है। नटसूत्रों के द्वारा नटों को अभिनय के संविधान की शिक्षा दी जाती है ~~इस~~ नान्दी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है और अपने सहयोगी पारिपार्श्विक, नट, नटी या विदूषक आदि के साथ कार्यार्थ सूचक प्रसंग से वार्तालाप करता हुआ ऋतुविशेष के गान से प्रेक्षकों का मनोरंजन करता है और इसी वार्तालाप के द्वारा पात्र आदि के प्रवेश की सूचना देकर वह परिवार सहित निकल जाता है और नायकीय पात्र के प्रवेश के साथ नाट्य प्रारम्भ हो जाता है।

नाट्याभिनय में सूत्रधार अभिनय का समस्त उत्तरदायित्व संभालता है। पटकथालेखक जिन भावानुभूतियों के सहारे कथावस्तु का सृजन करता है, उन्हीं भावानुभूति के सहारे सूत्रधार कथावस्तु के अभिनय का निर्देशन करता है। वह कवि की भावानुभूति को ग्रहण करके मानसिक अभिनय को उपस्थित कर वस्तु का सृजन करता है। इस प्रकार आरम्भ में तो रचना से भावग्रहण करता है तत्पश्चात् कथावस्तु को समझकर रचनाकार की भूमिका निभा कर अपने ही मानसिक अभिनय का दर्शक बनता है। अन्त में भावानुभूति के गहन स्तर पर पहुँचकर अभिनय का निर्देशन करता है।

सूत्रधार की भूमिका के कारण नाट्य साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न सिद्ध होता है। साहित्य की अन्य विधाओं का सम्बन्ध सीधे ही कवि

आधारित है तो स्थापक मानवीय वेशभूषा धारण करता है धनञ्जय, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने स्थापक को गुणों और प्रभाव में सूत्रधार के समान ही माना है। इनका मानना है कि पूर्वरंग के विधि-विधानों की सम्यक् अनुपालना न किये जाने से सूत्रधार के द्वारा ही कथावस्तु की स्थापना का प्रचलन हो गया है।

• **पारिपार्श्विक** → परि उपसर्ग पूर्वक पार्श्व शब्द से स्वार्थ में एक् प्रत्यय और आदि अच् की वृद्धि करने पर पारिपार्श्विक (परि+पार्श्व+ठक्) शब्द व्युत्पन्न है। पारिपार्श्विक का अर्थ है - 'समीप अथवा अगल-बगल रहने वाला'। नाट्य के प्रसंग में में इसका अर्थ है - सहायता के लिये सूत्रधार के समीप रहने वाला विशेष नट "पारितः समन्तात् सूत्रधारस्य पार्श्वे चरतीति पारिपार्श्विकः"। वस्तुतः यह सूत्रधार का सहयोगी नट है। काव्यार्थ की स्थापना में यह सूत्रधार की सहायता करता है। शारदातनय के अनुसार जो भरतों के द्वारा अभिनीत अनेक प्रकार के रसों पर आश्रित भावों का परिष्कार करता है वह सूत्रधार के पार्श्वस्थ होने से पारिपार्श्विक कहलाता है। तात्पर्य यह है कि सूत्रधार की भावना यह नटों से सरस अभिनय कराता है। उनमे कुछ त्रुटि रह जाती है तो उनका परिमार्जन करता है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार नान्दी के बाद दोनो पारिपार्श्विक उच्च स्वर से नान्दी की भावना स्तुति आदि पाठ का उच्चारण करें। उच्चारण विशेष के कारण इसे वाही भी कहते हैं। रंगमंच से निकलने से पूर्व सूत्रधार महाचारी के बाद त्रिगत की योजना करता है। त्रिगत प्रस्तावना का एक प्रकार है जिसमे तीन प्रयोक्ता मंच पर उपस्थित होते हैं। त्रिगत के माध्यम से प्रस्तुत प्रस्तावना में सूत्रधार के साथ विदूषक आदि हास्यजनक अम्म असम्बद्ध बातें करके दर्शकों को हँसाते हैं। विदूषक पारिपार्श्विक की उचित बातों को भी दोषपूर्ण कहता है, किन्तु सूत्रधार पारिपार्श्विक की बातों का समर्थन करता है।

नाट्यरचनाओं में प्रस्तावना के प्रसंग में प्रायः पारिपार्श्विक की उपस्थिति दिखाई देती है। उदाहरण के लिये वेणीसंहार नाटक में सूत्रधार दर्शकों के मनोरंजन के लिये पारिपार्श्विक से शरदृतु का गीत गाने का निर्देश देता है। सूत्रधार श्लिष्ट शब्दावली में काल (शरत्काल) के प्रभाव से धार्तराष्ट्र नामक हंसो के विशेष समूह भूमण्डल पर उतरने का वर्णन करके उसके माध्यम से काल अर्थात् मृत्यु के कारण धार्तराष्ट्र अर्थात् कौरवपक्षी के काल-कवलित होकर भूमिपर गिरने की भावी घटना का संकेत भी करता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीयम और मालविकाग्निमित्रम् में भी पारिपार्श्विक कथानक की प्रस्तावना में सूत्रधार का सहयोग करते हैं।

पारिपार्श्विक मध्यम प्रकृति का रूप, गुण, आकृति मे सूत्रधार से बहुत ही कम

और सहृदयों के मध्य सेतु का कार्य करता है। अपने विशाल नटवर्ग की सहायता से वह कवि की भावनाओं को प्रेक्षकों तक पहुँचाता है। प्रेक्षक नाट्यविद्या में कवि की भावभूमि से सीधे संवाद स्थापित नहीं करता प्रत्युत सूत्रधार के माध्यम से ही वहाँ तक पहुँच पाता है। अतः नाट्य प्रयोग में इसकी प्रेरणा और कल्पना का विशेष महत्व होने से भरत ने इसके सहज और अर्जित गुणों का विस्तार से विवरण देकर इसके आदर्श और गुरुतर व्यक्तित्व को अंकित किया है।

● **नाट्याचार्य** → भरतमुनि ने सूत्रधार को ही नाट्याचार्य कहा है। यह विद्वानों से प्राप्त शिक्षण और शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर अपने ज्ञान से गीत, वाद्य, नृत्त तथा पाठ्य को अभिनेताओं से प्रयोग कराता है। यह ज्ञान, विज्ञान, करण, वचन, प्रयोग सिद्धि और शिष्यनिष्पादन की क्षमता से युक्त होता है।

● **स्थापक** → सूत्रधार के सहायकों में स्थापक का दायित्व सर्वाधिक उल्लेखनीय है। स्थापक (स्था + णिच् + पुक् + ण्वुल्) शब्द का व्युत्पत्ति परक सामान्य अर्थ है - स्थापित करने वाला, नींव डालने वाला, किसी को दृढ़ता से जमाने वाला। नाट्य के प्रसंग में इसका सम्बन्ध काव्यार्थ की स्थापना द्वारा नाटकीय वस्तु को दृढ़ता प्रदान करने वाले प्रयोक्ता से है। नाटककारों की उपलब्ध परम्परा में प्राचीनतम नाटककार भास के रूपकों में कथानक की स्थापना का कार्य कराया गया है किन्तु परवर्ती रूपकों में स्थापना का कार्य सूत्रधार के द्वारा कराया गया है और इस कार्य को प्रस्तावना कहा गया है। भरतमुनि के अनुसार सूत्रधार के समान गुण और आकृति वाला स्थापक वैष्णवस्थानक चरणविन्यास को सौष्ठव युक्त शरीरावयवों से प्रस्तुत करते हुये मंच पर प्रवेश करे तथा सूत्रधार के समान चारी से पाँच कदम चले। स्थापक मंच पर प्रवेश के अवसर पर अर्थ के अनुरूप प्रावेशिकी ध्रुवा का गान किया जाये। वैष्णवस्थानक में दोनों पैर ढाई ताल के अन्तर से, एक पैर समाधित तथा दूसरा बगल की ओर तिरछा, जंघा संकुचित व शरीर के अन्य अवयव सौष्ठव पूर्ण स्थिति में होते हैं। इसकी संगति के लिये मध्यलय में त्र्यस्र और चतुरस्र तालों का विधान किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् स्थापक दैवत और आदरास्पद व्यक्ति की भक्ति सूचक चारी को अनेक भावों तथा रसों से युक्त सुन्दर और मधुर श्लोकों के द्वारा प्रस्तुत करे।

नाट्य की भूमिका जितनी सफलता पूर्वक स्थापित की जायेगी, सम्पूर्ण नाटक का प्रभाव भी प्रेक्षक पर उतना ही प्रगाढ़ होगा। कथावस्तु यदि मानवीय चरित्र पर

अन्तर रखता है। इसलिये इसके क्रियाकलाप भी दर्शकों को प्रभावित करते हैं। नाट्यदर्पणकार का यह कहना भी उपयुक्त लगता है कि प्रस्तावना में भाग लेने वाले नटों में जिस विदूषक की चर्चा मिलती है वह वस्तुतः पारिपार्श्विक ही है जो विदूषक का रूप धरकर मंचपर आता है और प्रेक्षकों का मनोरंजन करता है।

• **विदूषक** → नाट्यशास्त्र में विदूषक की चर्चा दो दृष्टियों को ध्यान में रखकर की गई है। प्रथमतः कथानक में राजा का या मुख्य नायक के शृंगार-सहायक नर्मसचिव के रूप में। इस भूमिका में वह चाटुकारिता से भरी मीठी बातें बनाने में कुशल, प्रधान नायक का मुख्य सहयोगी और परिहास में ही नायक-नायिका को मिलाने में मुख्य भूमिका निभाता है। अपनी भोजनप्रिय और हँसी उत्पन्न करने वाली बातों से दर्शकों का मनोरंजन करता है। प्रयोक्ताओं में जिस विदूषक की चर्चा की गई है, उसका कार्य उक्त विदूषक से भिन्न है, क्योंकि वह भी आचार्य की स्थापना के समय सूत्रधार के साथ दर्शकों को हँसाने के लिये परिहासपूर्ण बातें करता है और नाटक की प्रस्तावना में सहयोगी बनता है।

विदूषक के रूप, आकृति और गुणों की चर्चा में भरत कहते हैं ठिगने कद का, लम्बे दाँतों वाला, कुबड़ा, इधर-उधर बात लगाने वाला, अनाकर्षक सूरत वाला, गंजा, पीली अथवा भूरी आँखों वाला व्यक्ति विदूषक की भूमिका के लिए उपयुक्त रहता है। आमुख (प्रस्तावना) की परिभाषा में भी आचार्यों ने विदूषक की उपस्थिति स्वीकार की है –

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा॥

• **कुशीलव** → भरतमुनि ने नाट्यप्रयोक्ताओं में कुशीलवों को भी स्थान दिया है। भरत कहते हैं कि कुश और लव के द्वारा तालव विद्या को धारण करके अपनी आजीविका चलाने वाला समूह कुशीलव कहलाता है।

नानातोद्यविधाने प्रयोगयुक्तः प्रवादने कुशलः।
कुशलावदातव्याधीतं यस्मात् तस्मात् कुशीलवः स्यात्॥

नाट्य की सफलता में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है किसी दृश्य के परिवर्तन, पात्रों के निर्गमन रंगमंच पर प्रवेश, किसी विशेष देश काल, पात्र की मनःस्थिति में बदलाव आदि दिखाने के लिये तदनुकूल संगीतविधान दृश्य में रोचकता बढ़ाता है।

Harsha Kumari